International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

कबीर दास जी की भक्ति में सामाजिक चेतना एवं उनकी सृजनशीलता की प्रासंगिकता का अध्ययन

पूजा गोस्वामी
शोधार्थी, ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर उत्तर प्रदेश

डॉ.नवनीता भाटिया
एसोसिएट प्रोफेसर, ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर उत्तर प्रदेश

सारांश

हर युग का साहित्य अपने समय के समाज से प्रभावित होता है। साहित्य या आध्यात्मिक चेतना के लिए समाज-निरपेक्ष होना संभव नहीं है। कबीर की आध्यात्मिक चेतना अथवा उनकी भक्ति की विशेषता यही है कि यह समाज से जुड़ी हुई है। उनकी भक्ति में सामान्य गृहस्थों के लिए भी स्थान है तथा यह भौतिक जगत की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं करती है। उनकी कविता भी इसी कारण से विशिष्ट है। कबीर की कविता निरीह-शोषित जनता के साथ खड़ी होती है, उनका स्वर बनती है तथा शोषक सामंत वर्ग का ज़ोरदार ढंग से विरोध भी करती है। कबीर की कविता अथवा उनकी भक्ति या साधना-पद्धति की सामाजिक प्रासंगिकता पर विचार करने के क्रम में इस बात पर भी विचार करना होगा | कबीर मध्ययुगीन संत कवि है। मध्य-युग हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण काल रहा है। मध्ययुग का पूर्वार्द्ध जहाँ भक्ति आंदोलन का काल रहा है वहीँ इसका उत्तरार्द्ध घोर भौतिकवादी मान्यताओं वालें रीतिग्रंथकारों का भी काल रहा है। भारत में मध्ययुग सामाजिक उत्तल-पुथल का काल रहा है। शोषक सामंत, निर्धनों और निम्नवर्ग का शोषण कर रहें थें। निम्नवर्ग अथवा स्पष्ट कहें तो निचली जातियाँ एक ओर तो तो सामंती उत्पीड़न से बेहाल थीं तथा दूसरी ओर सामाजिक भेद-भाव से से त्रस्त थीं। जाति-पाति का भेद-भाव अपने चरम पर था। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था तथा पाखण्ड और आडम्बर की जड़े तेजी से फैलती जा रहीं थी। कबीर का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था।

मुख्य शब्द: संत कबीर, आधुनिक परिप्रेक्ष्य, भक्ति की प्रासंगिकता

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

प्रस्तावना:

संत साहित्य में अपभ्रंश व सिद्ध, जन साहित्य, नाथ पंथ और वैष्णव भक्ति आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संत नामदेव, गुरूनानक महाराज, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जबदास, मलूकदास, सहजोबाई इत्यादि का संत साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि संत धारा साहित्य में कबीरदास अग्रिम अधिकारी रहे हैं। हिंदी संत काव्य की दृढ़ नीव रखने वाले कबीरदास हुए हैं। कबीरदास के साहित्य का मुख्य उद्देश्य कर्मकांड की विसंगतियों को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना करना रहा। कबीरदास एक संतकवि होने के साथ ही एक समाज सुधारक की भूमिका में भी थे और जातिविहीन समाज व नारी अधिकारों के सचेतक थे।

संत साहित्य का प्राण तत्त्व है-लोक धर्म। सत रुपी परम तत्व का साक्षात्कार कर लेने वाले व्यक्ति को संत कहा जाता है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का संबंध 'शांत'से माना है और इसका अर्थ निरूपित किया है – निवृत्ति मार्गी या वैरागी। सामान्यत: सदाचार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को संत कहा जाता है। जो आत्मोन्नति एवं लोकमंगल में रत हो। इस अर्थ में अगर देखें तो 'कबीरदास' भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। आज की विचाराधारात्मक उठा-पठक और सामाजिक समस्याओं के बीच अनेक बार कबीर की बानियों के हवाले दिए जाते है। उनकी उक्तियों की सार्थकता बतायी जाती हैं। आज भी हिंदू समाज की सवर्ण या दलित समस्याओं या मुस्लिम कट्टरपंथी समस्याओं से लड़ने हेतु कबीरदास अक्सर याद किए जाते हैं।

'कबीर' भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। यह कबीर के साहित्य की ही देन है कि इतने वर्षों बाद भी हम उनकी रचनाओं में अपनी समस्याओं का हल देखते हैं। कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता दो दृष्टियों से है:-

· **प्रथमत:** साहित्य चाहे किसी भी काल का हो यदि वह वास्तविक साहित्य है तो सदा प्रासंगिक रहेगा। पठनीय रहेगा।

· **द्वितीयत:** उसका कथ्य, संदेश हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं के द्वारा एक कथ्य और संदेश देने

का प्रयास किया जो आज भी प्रासंगिक है और इन्हीं कथ्य, संदेशों के द्वारा कबीर प्रासंगिक है।

कबीरदास की रचनाओं पर बीती आधी सदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' तथा नामवर सिंह ने 'दूसरी परंपरा की खोज' नामक पुस्तक में कबीर की पुन: प्रतिष्ठा में काफी कुछ लिखा है। इससे पूर्व भी कबीरदास जी के ऊपर कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर', जिसमें संत कबीरदास जी के दोहे का अंग्रेजी अनुवाद है। 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर' अपने पहले संस्करण के समय से ही लगातार छप रही है तथा इसने पश्चिम में कबीर की लोकप्रिय छवि स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्ष 1910 में ही जब टैगोर अंग्रेजी में लिख रहे थे, तब उन्होंने कबीर को एक उदाहरण के तौर पर इस्तेमाल किया कि कैसे भारतीय अध्यात्म ने समुदायों के बीच विभाजन को पाटने का कार्य किया और कबीर, नानक और चैतन्य जैसे आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने-अपने समुदायों और ईश्वर के बीच परस्पर संबंधों का संदेश दिया।

व्यक्ति और पर-ब्रह्म के बीच संबंधों पर बात करते हुए टैगोर अक्सर कबीर की ही सहायता लेते है। अपनी रचना 'पर्सनेलिटी' में, जो कि 1917 में अमेरिका में उनके व्याख्यान पर आधारित एक किताब है, वह जिक्र करते हैं कि कैसे 'इंसान को एक से दूसरे के साथ सीधे संवाद के लिए जाना जाता है।' वह संवाद रुप और बदलावों की दुनिया में नहीं, दिक् और काल के विस्तार में भी नहीं, बल्कि यह संवाद चेतना के उस अंतरतम अकेलेपन में होता है, जो कि बेहद गहन और तीव्र होते हैं।

इसके बाद उन्होंने इस विचार को पुष्ट करने के लिए कबीर के अपने संकलन में से 76वें दोहे को उद्धृत किया। भारत के संबंध में अक्सर कबीर का उल्लेख करते हैं। जैसे अपनी किताब नेशनलिज्म(1916) में वह यह चर्चा करते हैं कि कैसे भारत में सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित हुआ और फिर अपने विचार के समर्थन में नानक, कबीर और चैतन्य को उद्धृत करते हैं।

कबीर में टैगोर की दिलचस्पी उनके सहयोगी क्षितिमोहन सेन (1880-1960) से भी प्रभावित थी। अपनी रचना 'इंडियन मिस्टिसिज्म' में उन्होंने विस्तार से बताया है कि जब वह 1908 में शांतिनिकेतन पहुँचे, तब वह कबीर के पदों पर काम कर रहे थे और जब टैगोर को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने इसे प्रकाशित करने के लिए उनको प्रोत्साहित किया। 1910 और 1911 में

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

उन्होंने चार पर्चे छपवाए, जिसमें एक संक्षिप्त परिचय, बांग्ला लिपि में हिंदी के पदों तथा बांग्ला में उन पदों की विस्तारपूर्वक व्याख्या थी। टैगोर कबीर को भारत की धार्मिक एकता का उदाहरण मानते थे, इस बात को और क्षितिबाबू के कबीर पर किए गए काम को देखें तो यह समझ में आता है कि कबीर का अनुवाद उनके लिए कितना महत्वपूर्ण था।

कबीर मूलत: आध्यात्मिक व्यक्ति थे, भक्त थे, संत थे। वे 'मन' को जीतने के लिए संतों और भक्तों को प्रेरित करते रहते थे। कबीर का सारा का सारा संघर्ष आसक्ति और तृष्णा के विरूद्ध था। यही बात उन्हें सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक बनाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को समाज-सुधारक नहीं मानते है। उनके अनुसार कबीर पहले कवि थे,समाज सुधारक बाद में। समाज-सुधारक न मानने के पीछे आचार्य जी के जो भी तर्क हों,इतना अवश्य है कि कबीर के विचार समाज की चक्की में पिस-पिस कर ही इतने सूक्ष्म बने थे। हो सकता हैं समाज-सुधार, उनका मुख्य उद्देश्य न रहा हो, लेकिन जिस समाज के बाशिंदों को वह संबोधित करते थे, वे समाज में हाशिए पर पड़े हुए लोग थे। चतुर सामाजिक जन सारी मलाई खुद मार ले जाते थे और छाछ अबोधों के लिए छोड़ जाते थे। कबीर की सारी लड़ाई इसी अन्याय के खिलाफ थी। कविता के माध्यम से कबीर की समाज की बुराईयों पर जो चोट करते हैं, वह समाज-सुधार का ही तो हिस्सा है। समाज-सुधार और क्या होता है?

कबीर की भक्ति की सामाजिक चेतना

कबीर हिंदी के मूर्धन्य कवियों में हैं। उनकी रचनायें हिंदी-क्षेत्रा के बाहर भी लगभग समूचे देख में लोकप्रिय हैं। कबीर की गणना हिंदी साहित्य के निगर्ुणधारा की ज्ञानाश्रयी उपधारा के कवियों में होती है। कबीर हिंदी के प्रखरतम कवि हैं। उनकी रचनाएँ निरक्षर, साक्षर और सुशिक्षितµसभी लोगों के बीच लोक-प्रिय है।

परिचयµ उनका मुख्य स्वर विद्रोह का है, यधपि कबीर मूल्यहीन विद्रोही नहीं है। वे संत कवि हैं। संत कवि सदाचरण पर अत्यधिक बल देते थे। उन्होंने वर्णाश्रम-व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करके मनुष्य की उच्चता और नीचता का मानदण्ड आचरण को माना, वर्ण को नहीं। पं. रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, 'अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन संत-महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है।

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

कबीर के पदों की भाषा सरल है। किंतु कबीर ने सरल भाषा में गंभीर अर्थ अभिव्यक्त किया है। विशेषत: उलटबाँसी शैली में रचित पद अपेक्षाॅत दुरूह है। कबीर ने पदों में अन्तस्साधनात्मक अनुभूतियाँ प्रकट की हैं। इसके लिए उन्होंने हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है। यहाँ उदाहरण के लिए दो पदों पर विचार किया जा रहा है।

जिअत न मारि मुवा मति लावै।

मांस विहूना घरि मति आवै हो कंता।

उर बिनु खुर बिनु चंचु बिनु बपु बिहूनां सोई रे।

सो सावज किन मानै कंता जाकै रगत मास ना होई रे।

पैली पार केै परघीं ताकी घनुहीं पनच नहीं रे

ता बेली कौ ढूक्यौ मि्रगलौ ता मि्रग कै सीस नहीं रे

मार भि्रगा जीवता राखा यहु गुर ग्यांन सही रे

कहै कबीर स्वांमी तुम्हरै मिलन कों बेली है पर पात नहीं रे।

इस पद का अर्थ समझने के लिए आवश्यक है कि हम इसमें प्रयुक्त कतिपय शब्दों का अन्योत्तिपरक अर्थ जान लें। यहाँ सम्बोधित 'कंता साधक है। 'मांस मन की चंचल वृत्तियों को नष्ट कर पाने की सफलता है। जो जीवित है उसे न मारना आध्यातिमक दृषिट से ब्रह्मोन्मुख वृत्ति को न मारना है; 'मुवा अर्थात आध्यातिमक दृषिट से निर्जीव से कोई प्रयोजन नहीं। अत: उसे न लाने की बात कही गई है। शिकार मन का करना है, उसकी चंचल वृत्तियों को नष्ट करके उसे वशीभूत करना है। वही मन 'सावज (श्वापद) पशु या मि्रगला (मृग-शावक) है। इस मन-मृग के उर, खुर, चंचु, वपु कुछ नहीं होता। इस 'सावज के न रक्त है, न मांस। इसे 'परली पार या उस पार का अलौकिक ज्ञानीरूपी शिकार (पारधी) ही मार सकता है, जिसके पास न धनुष है न प्रत्यंचा। इस मन मृग के पास 'सीस नहीं अर्थात वह विवेक-हीन है। इसीलिए वह 'बेली अर्थात शरीर-सुख, या शारीरिकता पर 'ढुका है, शारीरिकता में लिप्त है। लेकिन साधक इस मन-मृग को मारकर भी जीवित रखता है। उसे सांसारिक दृषिट से 'मृत करके पारमार्र्थिक दृषिट से जीवित कर देता है। यही सच्चा गुरु-ज्ञान है। कबीरदास ब्रह्म को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि स्वामी! अब साधक तुमस मिलन के लिए प्रस्तुत है। उसका शरीर

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

(बेली) अवश्य है, किंतु (मनोविकार) नष्ट हो गए हैं। अब यह सहज समाधि प्राप्त कर सकता है। शिकारी और शिकार के इस रूपक के द्वारा कबीर ने अपनी साधना-पद्धति को प्रकट किया है।

इसी प्रकार एक अन्य दुरूह पद पर विचार करें। पद इस प्रकार हैं-

मोहि अैसे वनिज सौं कबनु काज। जिहि घटै मूल नित बढ़ै ब्याजु।

नाइकु एकु वनिजारै पाँचु। बरध पचीस क संगु काँचु।

नउ बहियाँ दस गौनि आहि। कसनि बहत्तरि लागि ताहि।

सात सूत मिलि बनिज कीन। करम भाँवनी (री?) संगि लीन।

तीनि जगाती करत रारि। चलौ बनिजारा हाथ झारि।

बनिज खुटांनीं पूंजी टूटि। दह दिसि टाँडौ गयौ फूूटि।

कहै कबीर यहु जनमि वांदि। सहज समांनौ रही लादि।

इस पद में कबीर ने अपने समकालीन समाज में प्रचलित व्यापार का रूपक बाँधा है। उस समय एक नगर से दूसरे नगर में व्यापारी माल लादकर ले जाते थे और गहरा मुनाफा कमाते थे। बैलगाड़ियों पर माल लाद कर ले जाया जाता था। इन व्यापार-यात्राओं का एक प्रमुख होता था। नगर की सीमा पर चुंगी देनी पड़ती थी। इस व्यापार-यात्रा के समूह को 'टांडा कहते थे। (सम्भवत: ऐसे समूह के एक पड़ाव होने के कारण फैजाबाद जिले में एक कस्बे का नाम 'टांडा पड़ गया है।) ऐसे व्यापार में सदैव लाभ ही नहीं होता था। कभी-कभी हानि भी उठानी पड़ती थी। कबीर ने इस व्यापार-पद्धति के ढाँचे में अपनी साधना-पद्धति को रूपकबद्ध किया है।

कबीरदास कहते है कि मुझे ऐसे वाणिज्य से कुछ लेना-देना नहीं जिसमें मूलधन नित्य घटता जाता है और ब्याज निरंतर बढ़ता जाता है। मूलधन अर्थात जीवन निरंतर क्षीण होता जा रहा है और सांसारिक जंजाल-रूपी ब्याज नित्यप्रति बढ़ता जाता है। इस व्यापार का एक नायक है। नायक अर्थात जीव। इसमें बनजारे या व्यापारी हैं। ये बनजारे पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, अगिन, वायु, आकाश) हैं। इसमें पचीस बैलो का कच्चा, असिथर साथ है। पचीस बैलों का अर्थ साधना-पक्ष में पचीस

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

प्रऩतियाँ हैं। इसमें नौ बहियाँ या बाँस की खपाचियाँ हैं। बाँस की नौ खपाचियों या 'बहियों का आशय इस पद में नौ नाड़ियों से है। इस व्यापार-यात्राा में दस 'गोनि है। गोनि दो मुँह के थैले को कहते हैं। इस प्रकार यह थैला लेकर प्राचीन काल के लोग यात्राा पर निकलते थे। दस इनिद्रयोंμ पाँच कर्मेनिद्रयों और पाँच ज्ञानेनिद्रयों को ही इस पद में दस 'गोनि या दो-मुहां थैला कहा गया है। दो इनिद्रयों को दो-मुहाँ थैले कहना साभिप्राय है, क्योंकि इनिद्रयाँ अंतमर्ुखी भी हो सकती हैं और बाáोन्मुखी भी जिसमें कसने के लिए बहत्तर 'कसनि या रसिसयां लगी हुई हैं। बहत्तर कसनियों या रसिसयों का तात्पर्य साधना-पक्ष में शरीर की बहत्तर ग्रनिथयों से है। यह व्यापार सात सूतों या सौदों का किया गया है। इस पद में कबीर ने सात सौदों से शरीर की सात धातुओं रक्त, मांस, मज्जा, वसा, असिथ, शुक्र, रस प्रकट किया है।

इस व्यापार-यात्राा में कर्म या प्रारब्ध की भाँवरी है अर्थात कर्मों के अनुसार मनुष्य को नाना योनियों में चक्कर लगाना पड़ता है। यहाँ तीन जगाती चुंगी वसूल करने वाले हैं। ये जगाती सत्व, रज, तम तीन गुण हैं। लेकिन इस व्यापार-यात्रा का अंत कहाँ होता है! अन्ततः पाँचों बनजारे हाथ झाड़कर चल देते हैंμ पांचों भूत अलग-अलग तत्त्व में मिल जाते हैं। इस प्रकार जीव-रूपी व्यापार का मूल 'आयु ही नष्ट हो जाती है और यह व्यापार समूह या टांडा दसों दिशाओं में बिखर जाता है। कबीर दास के अनुसार इस प्रकार यह जीवन असफल और निरर्थक हो जाता है। कबीर इस प्रकार के व्यापार में नहीं प्रवृत्त होते। वे तो उचित सौदे को लादकर सहज समाधि में लीन हो जाते हैं।

कबीर की भक्ति की प्रासंगिकता

कबीर निम्न तबके के जुलाहे थें। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव का विष-दंश झेल था। जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन तथा श्रेष्ठ गुणों का तिरस्कार आदि उन्होंने स्वयं देखा था। कबीर को ये भेद-भाव स्वीकार नहीं थें। अतः उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना है।–

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।

मोल करों तलवार की पड़ी रहन दो म्यान॥"

कबीर निर्गुण भक्ति और शंकर के अद्वैत को अपनाया। इन दोनों के लिए ही काफी उच्च ज्ञान तथा बौद्धिकता अनिवार्य है। कबीर न तो ब्राह्मण थें और नहीं पर्याप्त रूप से शिक्षित ही थें, फिर उन्होंने ऐसा मत क्यों चुना?

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

कबीर उच्च कोटि के मानवतावादी संत थें। प्रारम्भ में बड़े सरल और भावुक रहे होंगे। उनकी सरलता उनमें बची रही, बाद में उनकी अक्खड़ता-फक्कड़ता के रूप में स्थान्तरित हो गई, क्योंकि जो सरल होता है वही बेबाक होता है; परन्तु उनकी भावुकता के साथ क्या हुआ? अपने हिंदी साहित्य के इतिहास स्वयं आचार्य शुक्ल लिखते है की रामानंद जी के प्रभाव के कारण उन्हें हिन्दू रीति-रिवाज आकर्षित करते थें- "वे राम-राम जपा करते और कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थें।"

यह संभव है कि बाल्यावस्था में सगुण भक्ति की ओर इनकी रुचि रही हो परन्तु यदि ऐसा था तो इन्होंने निर्गुण भक्ति क्यों स्वीकार की? रामानंद जी स्वयं सगुणोपासक थे एवं सगुन रामोपासना का उपदेश देते थे।

गंगा तट वाली घटना में भी उन्होंने कबीर से यही कहा था कि 'राम-राम बोल'। उनके इस राम का आशय सगुन राम से था, फिर कबीर की गुरु भक्ति की भावना भी विख्यात है-

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपनै, गोविन्द दियो बताय॥"

"यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।"

आखिर क्या कारण था कि रामानंद जी के मन्त्र को भी कबीर ने अपनी मान्यता के अनुसार परिवर्तित करके ही स्वीकाार किया? यदि यह संभव है की कबीर सगुन भक्ति तथा हिंदू रीति-रिवाजों(भक्ति की पद्धति) के प्रति आकर्षित थे, तब यह भी संभव है कि उनके कार्यों का यथा नाम जप तथा तिलक लेपन आदि का विरोध हुआ हो। हिंदू-मुस्लिम दोनों ने इसका विरोध किया होगा। बालक कबीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा? हिन्दू मुस्लिम, ऊँच-नीच का भेद-भाव, छूआ-छूत इन सबने कबीर को अंदर से झकझोर दिया।कबीर की भावुकता दब गई तथा उनके स्थान पर भेद-भाव के विरोध के लिए आवश्यक जुझारूपन उनके अंदर विकसित हुआ। सगुण भक्ति को स्वीकार न करने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह की सगुण भक्ति चाहे-अनचाहे ब्राह्मणवादी पौराणिकता, सामंती रुढ़िओं और भेद-भाव का पोषण करती है। मानव-मानव में समानता की जो भावना कबीर चाहतें थे, वह सगुण भक्ति में संभव नहीं थी। दूसरा कारण मेरे अनुसार कहीं न कहीं यह भी हो सकता है कि इस्लामिक संस्कारों और मान्यताओं के अनुसार सगुण भक्ति इनके अनुकूल न थी। कबीर

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

मानव मात्र से प्रेम से प्रेम करते थे। इनके लिए सब सामान है, कोई भेद नहीं है। न कोई राजा है, न कोई रंक है, न कोई पंडित है, न कोई मुर्ख, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र; सभी उसी परमब्रह्म के अंश हैं, सभी ब्रह्म हैं।

शंकर के अद्वैत को स्वीकार करने के पीछे इनका यह मानव मात्र के प्रति प्रेम तथा उनकी समदृष्टि ही कारण था। इस प्रकार इनकी भक्ति साधना और इनके दार्शनिक विचार सब समाज के द्वारा ही उत्प्रेरित थें। कबीर एक भक्त के साथ ही समाज सुधारक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। समाज सुधार के उनके कार्य या उनकी कविता की सामाजिकता का अध्ययन हम निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत करेंगे।

निष्कर्ष-

वस्तुत: कबीर सामाजिक मूल्यों का विरोध करते समय सर्वनिषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते। वे बुराइयों की निन्दा करते हैं लेकिन साधना और सामाजिकता को नए मूल्य प्रदान करते हैं। कबीर हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अपने समय में प्रचलित नाना प्रकार की साधनाओं से परिचित थे। उन्होंने सबकी त्रा ुटियों की आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्त्व ग्रहण किया। कबीर भक्त थे। भकित âदय की साधना है। इस âदय-साधना वे+ चलते वे शुष्क ज्ञान-साधना से आगे बढ़कर जगत से भावात्मक सम्बन्ध जोड़ सवे+ थे। इस भाव-साधना ने उन्हें समस्त सृषिट वे+ साथ जोड़ा था और मानव-समाज की विषमताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की थी। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी इस भाव-साधना का ही एक पक्ष है। उनकी सामाजिक चेतना उनकी परमार्थ चेतना में घुली-मिली है। संत कबीर के विचार दीर्घकालीन भारतीय चिंतन श्रृंखला की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। कबीर के विचार उपनिषदों, भगवान बुद्ध की मान्यताओं, शंकर के विचारों औ र मध्कालीन सिद्धों की शिक्षाओं के सार हैं। कबीर की साधना पद्धति, उनकी भक्ति और उनके सामाज सुधार के विचार उस समय भी महत्वपूर्ण थें तथा आज भी महत्वपूर्ण हैं। आज भी तमाम ऐसे उपकरण हैं, ऐसे व्यर्थ के कार्य हैं जिनका मानव के जीवन में कोई महत्व नहीं है, परन्तु मानव है कि अपने जरूरी कार्यों को छोड़ कर उन व्यर्थ के कामों में लगा रहता है। ये कार्य, ये उपकरण और कुछ नहीं माया ही है। हमें इनके बीच ठीक वैसे ही रहना होगा जैसे कबीर घर-गृहस्थी में होने के बाद भी विरक्त हो कर जीते थे।

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

'उपयोग उतना ही होना चाहिए जितना अनिवार्य हो अधिक की लालसा व्यर्थ है', आज के भौतिकवादी विश्व में कबीर के ये विचार और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। समदृष्टि की जो बात कबीर ने कही थी, उन्होंने जो मानव-मानव के बीच अभेद्य की बात कही थी वह आज के समय में प्रासंगिक है।

कबीर के उपदेशों को आज फिर से उभारने की जरुरत हैं। समाज में समत्व की भावना लाने की जरुरत है। छूआ-छूत, उँच-नीच की भावना को एक शिक्षित समाज का गुण-तत्त्व नहीं माना जा सकता। इस सामाजिक बुराई को हटाने की जरुरत है। धार्मिक बुराई, यथा तीर्थ-स्थान, कुर्बानी, श्राद्ध, मूर्तिपूजा, मुस्लिम धर्म में कुर्बानी, हलाल, सुन्नत इत्यादि को वे गलत मानते थे। यदि वास्तव में साम्यवाद लाना है तो कबीर की दृष्टि रखनी होगी। साथ ही धार्मिक तटस्थता भी रखनी होगी। कबीर की दृष्टि तो मार्क्स से भी पुरानी थी। उनकी यह समदर्शिता ही थी। इसी कारण, वे धन जोड़ने को गलत मानते थे। वे कर्मवाद के प्रबल समर्थक थे। बिना कर्म किए पाप धुलता नहीं। इस प्रकार सर्व-धर्म समभाव, विश्व में सभी के प्रति समदृष्टि, अपरिग्रह, कर्मयोग,तथा दया आदि मानवीय गुणों पर उन्होंने बल दिया। इसी कारण वे मानवतावादी कवि माने जाते है। और इन्हीं कारणों से वे सर्वाधिक प्रासंगिक है और रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

- कबीर: हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 145
- कबीर समग्र: (सं.) युगेश्वर, पृ. 406
- कबीर साहित्य और सिद्धान्तः यज्ञदत्त शर्मा, पृ. 122
- कबीर समग्र: (सं.) युगेश्वर, पृ. 724
- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि: विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, पृ. 346
- कबीर समग्र: (सं.) युगेश्वर, पृ. 443
- कबीर: हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 242
- इग्नू स्नातकोत्तर अध्ययन सामग्री
- सेमिनार से साभार, अनुवाद: प्रवीण प्रभाकर, दैनिक हिंदुस्तान, 02 मई, 2015
- इंटरनेट एवं विभिन्न अध्ययन सामग्री